

तत्त्वाभिव्यक्ति की निर्बाध शैली : स्याद्वाद

रमेशमुनि शास्त्री

जैन दर्शन विश्लेषण प्रधान दर्शन है। विश्लेषण इतना सूक्ष्म एवं गंभीर है कि अध्येता को विस्मय से मुग्ध कर देता है और बौद्धिक चिंतन के क्षेत्र में बहुमुखी विश्लेषणवाद को प्रश्रय देता है। एतदर्थ यह प्रत्यक्ष तथ्य है कि जैन दर्शन विश्व-जनीनता का सुदृढ़ आधार लिये हुए है। यह दर्शन स्याद्वाद के सुदृढ़ स्तंभ पर आधारित है।

स्याद्वाद यह पद स्यात् और वाद का संयुक्तीकरण है। स्यात् शब्द तिङ्त पद जैसा प्रतीत होता है। किन्तु वस्तुतः यह एक अव्यय है। जो “किसी अपेक्षा” से इस अर्थ का द्योतक है।¹ और वाद का अर्थ कथन या प्रतिपादन-शैली है। स्याद्वाद की कथन शैली में “स्यात्” शब्द की प्रधानता है। एतदर्थ “स्यात् अस्ति घटः”, “स्यात् नास्ति घटः” जैसे वाक्यों का प्रयोग होता है।

इस प्रकार स्याद्वाद पद का वाच्य अर्थ हुआ—भिन्न भिन्न अपेक्षाओं से पदार्थ प्रतिपादन करना। स्याद्वाद सिद्धान्त सत्य के प्रत्येक पहलू का परिज्ञान कराता है। इसमें विविध दृष्टि बिन्दुओं से पदार्थ की यथार्थता का कथन किया जाता है। वास्तव में जड़ और चेतन में अनन्त गुण धर्म विद्यमान हैं। इन समग्र गुण धर्मों का कथन एक साथ कोई भी नहीं कर सकता है। विवक्षानुसार ही एक समय में किसी एक धर्म को केन्द्रित करके कहा जा सकता है। इसे ही दार्शनिक भाषा में सापेक्षवाद भी कहते हैं।

१. (क) सर्वथात्य निषेध का नैकान्तता द्योतकः कथंचिदर्थे स्यात् शब्दो निपातः पंचास्तिकाय टीका।

(ख) वाक्यष्वन कान्त द्याती गम्यं प्रति विशेषकः।
स्यान्निपातार्थं या गित्वात्तस्य केवलिनामपि ॥

—आप्तमीमांसा १०३

सत्य या तत्व के प्रकाशन के लिये दो आधार बिन्दु हैं। स्याद्वाद और केवलज्ञान। केवलज्ञान सत्य का साक्षात् बोध प्रदान करता है और स्याद्वाद परोक्ष आगम के माध्यम से और वह भी क्रमिक। केवलज्ञान केवल एकमात्र केवली का बोध है शेष के लिए तो स्याद्वाद ही आलंबन है।^२ स्याद्वाद को “संपूर्णार्थ विनिश्चयी और सकलादेश” कहा गया है।^३ तात्पर्य यह है कि वह पूर्ण सत्य को प्रस्तुत करने वाला है दूसरी ओर अनेकान्तता से स्याद्वाद संस्कृत हो कर चलता है यह भी कहा गया है।^४

स्याद्वाद सिद्धान्त जो विविध दृष्टि बिन्दुओं से एक ही वस्तु में नित्यता-अनित्यता, सादृश्य-असदृश्य, वाच्य-अवाच्य, सत्-असत्^५ आदि परस्पर विरोधी गुण धर्मों का अविरोध प्रतिपादन करके उनका तर्कसंगत एवं समन्वय परक प्रकाश को विकीर्ण करता है।

जो पदार्थ नित्य प्रतीत होता है, वह अनित्य भी है। जो वस्तु अनित्य है, वह नित्य भी है। तात्पर्य यह है कि जहाँ नित्यता है वहाँ अनित्यता भी है। अनित्यता के अभाव में नित्यता की पहचान नहीं हो सकती है और नित्यता के अभाव में अनित्यता की प्रतीति नहीं हो सकती। एतदर्थ एक की प्रतीति द्वितीय की प्रतीति से ही संभव है।

२. तत्त्व ज्ञान प्रमाणं ते युगपत्सर्वं भासनम्।

क्रमभावी च यज्ज्ञानं स्याद्वाद नय संस्कृतम् ॥

स्याद्वाद केवल ज्ञानं सर्वं सत्य प्रकाशने।

भेद साक्षादसाक्षाच्च ह्यवस्त्वन्यतमं भवेत् ॥

आप्तमीमांसा १०१-१०५

३. स्याद्वाद सकलादेशज्ञो, नयो विकल सर्वथा।

४. अनेकान्तात्मकार्थकथनं स्याद्वाद —लघोयस्थयः ६२

५. स्यान्नाशि नित्यं सदृशं विरूपं वाच्यं न वाच्यं सदसत् देव।

श्लोक-५ अन्ययोगव्यवच्छेदद्वात्रिंशिकाः

समग्र ज्ञानों की विषयभूत वस्तु अनेकान्तात्मक होती है।⁶ अतएव वस्तु को अनेकान्तात्मक कहा है। जिसमें अनेक अर्थभाव सामान्य विशेष गुण पर्याय रूप से पाये जाये, उसको अनेकान्त कहते हैं⁷ और अनेकान्तात्मक वस्तु को भाषा के द्वारा प्रतिपादित करने वाला सिद्धान्त स्याद्वाद कहलाता है। भगवान ने अनेकान्त दृष्टि से देखा और स्याद्वाद की भाषा में उसका निरूपण किया। एतदर्थ भगवान की वाणी स्याद्वादमयी होती है।⁸

जैन दर्शन में प्रत्येक प्रश्न का उत्तर अपेक्षा दृष्टि से दिया गया है। सत्य की सापेक्षता से लेकर पदार्थ के आंशिक पहलुओं पर दृष्टि डाली गयी है। वस्तु के पूर्व स्वरूप को सामने रख कर उनके विविध अंशों एवं रूपों का आकलन संकलन कर उनका अलग-अलग निर्वचन किया गया है। छोटे से दीपक से लेकर व्यापक व्योम तक समग्र पदार्थ अनेकान्त मुद्रा से अंकित हैं।⁹ इसलिए कोई भी वस्तु स्याद्वाद की सीमा से बाहर नहीं है।

सामान्य रूप से स्याद्वाद और अनेकान्त का स्वरूप जान लेने के पश्चात् स्याद्वाद के प्रकाश में प्रकाशित होने वाले कपितय उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

श्रमणोपासिका जयन्ति एक बार भगवान से पूछती है—“भगवन् सोना अच्छा है या जागना”। उत्तर में भगवान ने कहा—“कितनेक जीवों का सोना अच्छा है और कितनेक जीवों का जागना अच्छा है।” जयन्ति के अन्तर्मानस में पुनः प्रश्न उद्बुद्ध हुआ—भगवन् ! यह कैसे ? प्रभु महावीर ने कहा—“जो जीव अधर्मी है, अधर्मानुग है, अधर्मनिष्ठ है, अधर्मव्यायी है, अधर्म प्रलोकी है, अधर्मपरंजन है, अधर्म समाचार है, अधार्मिक वृत्तियुक्त है, वे सोते रहें यही श्रेष्ठ है। क्योंकि वे सोते रहेंगे तो अनेक जीवों को पीड़ा नहीं देंगे। और इस प्रकार स्वपर उभय को अधार्मिक अनुष्ठान में लगन-संलग्न नहीं करेंगे। एतदर्थ उनका सोना अच्छा है। किन्तु जो जीव धार्मिकवृत्ति वाले हैं, धर्मानुग हैं उनका तो जागना ही श्रेष्ठ है। क्योंकि वे अनेक जीवों को सुख देते हैं। स्व-पर और उभय को धार्मिक क्रिया में संलग्न करते हैं। अतः उनका जागना ही श्रेष्ठ है।”

जयन्ति—“भगवन् बलवान होना श्रेष्ठ है या दुर्बल होना” प्रभु महावीर—“जो जीव अधार्मिक है यावत् अधार्मिक वृत्ति वाले हैं, उनका दुर्बल होना अच्छा है। वे बलवान होंगे तो अनेक जीवों

को कष्ट पहुंचावेंगे। जो जीव धार्मिकवृत्तियुक्त हैं, उनका बलवान होना श्रेष्ठ है क्योंकि वे बलवान होंगे तो अधिक जीवों को सुख देंगे।”¹⁰

जैन दर्शन ने सापेक्षता के आलोक में दूसरों को समझाने का दृष्टिकोण प्रदान किया है। एकान्तता का निरीक्षण कर उसकी अनेकान्तता को संप्रस्तुत करता है। यह सही है कि किसी भी वस्तु के स्वरूप का प्रतिपादन एकान्तरूप में नहीं किया जा सकता। यह पदार्थ सत् ही है या असत् ही है, नित्य ही है या अनित्य ही है, यह एकान्तरूप में कहना भयंकर भूल है। क्योंकि वस्तु एकान्तधर्मी होती ही नहीं है। वह किसी अपेक्षा से नित्य नहीं कही जाती है तो किसी अपेक्षा से नित्य भी कही जा सकती है।

नित्यानित्य—एक चिन्तन

महात्मा बुद्ध ने लोक जीव आदि की नित्यता अनित्यता, सान्तता-अनन्तता आदि प्रश्नों को अव्याकृत कह कर टाल दिया।¹¹ परन्तु आत्मा के संबन्ध में गणधर गौतम और प्रभु महावीर का एक सुंदर संवाद आगम में उपलब्ध होता है।

एक समय की बात है, श्रमण प्रभु महावीर के चरणारविन्दु में वंदना करने के पश्चात् गणधर इन्द्रभूति गौतम ने विनम्रभाव से पूछा—“भगवान जीव नित्य है या अनित्य, प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवान महावीर ने कहा—“गौतम जीव नित्य भी है और अनित्य भी है।” गौतम के अन्तर्मानस में जिज्ञासा जागृत हुई कि यह किस हेतु से कहा कि जीव नित्य भी है और अनित्य भी है। उत्तर में भगवान ने कहा—“गौतम द्रव्याधिक दृष्टि से जीव नित्य है और पर्यायाधिक दृष्टि से अनित्य है।”¹² प्रस्तुत संवाद का अभिप्राय यह है कि द्रव्यदृष्टि से जीव नित्य है और पर्यायाधिक दृष्टि से अनित्य है।

द्रव्य दृष्टि का अर्थ है अभेद दृष्टि और पर्याय दृष्टि का अर्थ है भेददृष्टि। द्रव्य की अपेक्षा से जीव में जीवत्व सामान्य का कभी अभाव नहीं होता है, किसी भी अवस्था में रहा जीव, जीव ही रहेगा। वर्तमान में है और भविष्य में रहेगा। मूल द्रव्य के रूप में उसकी सत्ता त्रैकालिक है। जहाँ जीव द्रव्य है वहाँ उसके कोई न कोई पर्याय अवश्य होती है। जो जीव है वह विविध गतियों में विविध अवस्थाओं में परिणत होता ही है। क्योंकि वह पशु-पक्षी, स्थावर अथवा सिद्ध में से कुछ तो अवश्य होगा ही। इस प्रकार वह किसी न किसी पर्याय को ग्रहण करता रहता है। अतः पर्याय की अपेक्षा जीव अनित्य है तात्पर्य यह है कि जीव द्रव्यतः नित्य है और पर्यायतः अनित्य है।

१०. भगवती सूत्र—१२।२।४४३

११. मज्झिमनिकाय—चालुमालुं क्यसुत्त—६३१

१२. जीवाणं भंते किं सासया असासया ? गोयमा जीवासिप सासया सिप असासया । गोयमा दब्बद् याए सासया भावद् याए असासया । —भगवती ७।२।२७३

६. अनेकान्तात्मकं वस्तु गोचरं सर्वं संविदाम् ।

—न्यायावतार सिद्धसेन

७. अथोज्जेकान्तः अनेके अन्ता भावा अर्थाः सामान्य विशेष गुण-पर्याया, यस्य सोज्जेकान्त ।

८. स्याद्वाद भगवत्प्रवचनम् ।—न्यायविनिश्चयाः विवरण पृ. ३६४

९. आदीप मात्थोम सम स्वभावं, स्याद्वादमुद्रनति श्रेदि वस्तु ।

तन्नित्य मैवेकमनित्यमन्यदिति त्वदाज्ञा द्विषतांप्रलापां ॥

—अन्ययोगव्ययच्छेदद्वान्विशिका श्लोक ५

सांख्य दर्शन आत्मा को नित्य मानता है। उसके अभिमता-नुसार आत्मा सदा सर्वदा एक रूप रहता है। उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता है। संसार और मोक्ष भी आत्मा के नहीं हैं, प्रकृति के हैं।¹³ सुख-दुःख और ज्ञान भी प्रकृति के धर्म हैं, आत्मतत्त्व के नहीं हैं।¹⁴ आत्मा को तो सांख्य दर्शन में स्थायी, अनादि, अनन्त, अविकारी नित्य चित्स्वरूप और निष्क्रिय माना है। तात्पर्य यह है कि सांख्य दर्शन एकान्ततः नित्यवाद को मानता है।

मीमांसक दर्शन के मतानुसार आत्मा एक है परन्तु देह आदि की विविधता के कारण वह अनेकविध प्रतीत होता है।¹⁶

नैयायिक ईश्वर को कूटस्थ नित्य और दीपक को अनित्य मानते हैं। बौद्ध दर्शन के अभिमतानुसार जन्म, जरा, मरण आदि किसी स्थायी ध्रुव जीव के नहीं होते हैं किन्तु विशिष्ट कारणों से उनकी उत्पत्ति होती है। नित्यानित्य संबंध में बौद्ध दर्शन की निराली दृष्टि है। बुद्ध से आत्मतत्त्व के संबंध में किसी जिज्ञासु ने अपनी जिज्ञासा प्रस्तुत करते हुवे पूछा। तब उसका उत्तर न दे कर वे मौन रहे। मौन रहने का कारण पूछने पर उन्होंने बताया कि यदि मैं कहूँ कि आत्मा है तो मैं शाश्वतवादी कहलाऊँगा और अगर कहूँ कि आत्मा नहीं है तो उच्छेदवादी कहलाऊँगा—इसलिए इन दोनों के निषेध के लिए मैं मौन रहता हूँ।¹⁷

किन्तु जैन दर्शन में नित्यानित्य के संबंध में जो चिंतन किया गया है वह अनुठा है, अपूर्व है। वह स्वतंत्र चिंतन है, स्वतंत्र निरूपण पद्धति है। इस दर्शन की प्रतिपादन पद्धति सापेक्षतापरक है। यह नित्यानित्य के एकान्तों का निरसन कर सत्य के अनेकान्त सापेक्ष धर्मों को स्वीकार कर समन्वय कर देता है। यही उसकी सर्वोपरि असाधारण विशेषता है।

इसी प्रकार लोक नित्य है या अनित्य है, इस प्रश्न के उत्तर में श्रमण प्रभु महावीर ने कहा—“जमाली ! लोक नित्य भी है और अनित्य भी है। क्योंकि एक भी ऐसा समय नहीं आ सकता जब लोक न हो अतएव लोक नित्य है। लोक का स्वरूप सदा एक सा नहीं रहता, अतएव वह अनित्य भी है। अवसर्पिणि और उत्सर्पिणि काल में उत्थान पतन होता रहता है। कालक्रम से लोक में

विविधरूपता आती रहती है, एतदर्थ लोक अनित्य है अर्थात् अशाश्वत है।¹⁸

एक समय की बात है कि प्रभु महावीर से मिलने स्कन्दक ऋषि आये। वन्दना करके विनम्र भाव से बीले कि प्रभु लोक सान्त है या अनन्त है। प्रभु ने उत्तर दिया—स्कन्दक लोक को चार प्रकार से जाना जाता है। द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से। द्रव्य की अपेक्षा से लोक है और सांत है। क्षेत्र की अपेक्षा से लोक असंख्यात योजन कोटा-कोटि विस्तार और असंख्यात योजन कोटा-कोटि परिपेक्ष प्रमाणवाला है। इसलिए क्षेत्र की दृष्टि से लोक सान्त है। काल की अपेक्षा से कोई काल ऐसा काल नहीं रहा जब लोक न हो, अतः लोक ध्रुव है। नियत है, शाश्वत है, अक्षय है, अव्यय है, अवस्थित है, नित्य है, उसका कभी अन्त नहीं है। भाव की अपेक्षा से लोक के अनन्त वर्ष पर्याय, गंध पर्याय, रस पर्याय और स्पर्श पर्याय हैं। अनन्त संस्थान पर्याय हैं। अनन्त गुरु-लघु पर्याय हैं। अनन्त अगुह लघु पर्याय हैं, उसका कोई अन्त नहीं है। एतदर्थ लोक द्रव्य दृष्टि से सान्त है, क्षेत्र की अपेक्षा से सान्त है, काल की अपेक्षा से अनन्त है। भाव की अपेक्षा से अनन्त है।¹⁹

जीव सान्त है या अनन्त है इस प्रश्न का समाधान करते हुवे प्रभु महावीर ने कहा—“जीव सान्त भी है और अनन्त भी है। द्रव्य की अपेक्षा से एक जीव सान्त है। क्षेत्र की दृष्टि से भी जीव असंख्यात प्रदेशयुक्त होने के कारण सान्त है। काल की दृष्टि

१८. सासए लोए जमाली-जत्र कयाविणासीनो कथाविणभवति ।
ण कथाविन भावेस्सई-भुवि च भवई य भविस्सई य ॥
धुते णि तिए सासए अक्खए भव्वए अवहिए किच्चे असासण
लोएजमाली ।

ज ओ ओसर्पिणी भविता उसर्पिणी भवई ॥

—भगवती सूत्र ८।३३।३८७

१९. एवं खलु भए खन्दया । चउव्विहे लोए पण्णत्ते । तं जहा
दव्वओ खेतओ कालओ भावओ । दव्वओ णं एमे लोए स
अंते । खेतओ णं लोए असंखेज्जाओ जोयणः कोटा कोड़िओ
जायाम विवखंमेण असंखेज्जाओ जोयण कोटा कोड़िओ
परियेववेणं पण्णत्ते । अत्थि पुण स अंते ॥

कालाओणं लोए ण कयावि न आसि न कयावि न भवति न
कयावि न भविस्संति । भविसुय भवति य भविस्सई य धुवे
णित्तिए सामते अक्खए अव्वए अवट्ठिए पिच्चेणात्थि त्वेणात्थि
पुण से अंते ।

भाव जो णं लोए अणंता वण्णपज्जवा, गंधपज्जवा रसपज्जवा
फास पज्जवा अणंता संगण पज्जवा अणंता गरुह लहयपज्जवा
अणंता अगुरु लहुए पज्जवा नत्थि पण से अन्ते ।

से चं खन्दगा । दव्वओ लोए स अंते खेतओ भोए स
अन्ते कालनो लाए अणंते भाव तो लोए अणन्ते ।

—भगवती सूत्र २।१।९०

१३. सांख्यकारिका ६२

१४. सांख्यकारिका ११

१५. अमूर्तश्चेतनो भोगी नित्यः सर्वगतोऽक्रियः ।

अकर्ता निर्गुण सूक्ष्मः आत्मा कपिल दर्शने ॥

—षड्दर्शन समुच्चय ॥

१६. एक एव हि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः ।

१७. अस्तीति शाश्वत, गाही, नास्त्यव्युच्छेद दर्शनम् ।

तस्मादस्तित्व-नास्तित्वे, ना श्रीयते विचक्षणः ॥

—माध्यमिक कारिका १८।१०

से भी जीव भूतकाल में था, वर्तमान में है और भविष्यकाल में रहेगा। अतएव अनन्त है। भाव की अपेक्षा से जीव के अनन्त ज्ञान पर्याय हैं, अनन्त दर्शन पर्याय, अनन्त चरित्र पर्याय तथा अनन्त लघु पर्याय हैं, अतः अनन्त है।²⁰ सारांश यह है कि द्रव्य दृष्टि से जीव सान्त है, क्षेत्र की अपेक्षा से सान्त है, काल की दृष्टि से अनन्त है, तथा भाव की अपेक्षा से अनन्त है। तात्पर्य यह है कि जीव कथंचित् सान्त है और कथंचित् अनन्त है।

बौद्ध दर्शन ने जीव की सान्तता और अनन्तता के विषय में वही मत स्थिर किया है जो नित्यता और अनित्यता में था। तात्पर्य यह है कि सान्तता और असान्तता दोनों को अव्यावृत्त कोटि में रखा है।²¹ किन्तु जैन दर्शन ने प्रस्तुत प्रश्न का उत्तर अपनी दृष्टि से दिया।

एकता और अनेकता

जैन दर्शन का यह मन्तव्य है कि प्रत्येक पदार्थ में एकता और अनेकता ये दोनों धर्म विद्यमान हैं। जीव द्रव्य की एकता और अनेकता का प्रतिपादन करते हुवे प्रभु महावीर ने कहा—द्रव्य दृष्टि से मैं एक हूँ और ज्ञान और दर्शन की अपेक्षा से मैं दो हूँ। परिवर्तन न होने वाले प्रदेशों की अपेक्षा से अक्षय हूँ, अव्यय हूँ अवस्थित हूँ। बदलते रहने वाले उपयोग की अपेक्षा से अनेक हूँ।²²

इस प्रकार पदार्थ में परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाले धर्मों का एक ही द्रव्य में परिणमन करना अनेकान्तवाद की अनोखी देन है।

सत्-एक चिन्तन

सत् के स्वरूप का विवेचन करते हुवे जैन दर्शन ने कहा है कि जो द्रव्य है वह अवश्य सत् है क्योंकि सत् और द्रव्य दोनों एक हैं। जो है वह सत् है और जो असत् है, वह सत् है असत् रूप में। अतः सत्ता सामान्य की अपेक्षा से सब सत् है। सत् की परिभाषा निम्न रूप से की गई है—प्रत्येक सत् अर्थात् प्रत्येक द्रव्य उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य से युक्त है।²³ गुण और पर्याय वाला द्रव्य है।

२०. जे. वि. य खंदया। जाव स अन्ते जीवे तस्स वि य णं एयमहते एवं खलु जाव दव्यओणं एगे जीवे स अन्ते। खेत ओ णं जीवे असंखेज्जयए सिए असंखेज्ज पए सो गाढे अत्थि गुण जे अन्ते कालओ णं जीवे न कयावि न आसि जावणिच्चे नत्थि पुण से अन्ते भावओ णं जीवे अणन्ता णाण पज्जवा अणन्ता दंसण पज्जवा अणंत चरित्त पज्जवा अणन्ता अगुरु लघुत्थ पज्जवा नत्थि पुण से अंते ॥

—भगवती सूत्र २।९०

२१. मज्झिम निकाय चूल मालंक्खस्तुत —६३

२२. सोमिला दव्वट्ठयाए एगे अहं नाण दंसणदट्ठया ए दुविहे अहं पएसट्ठयाए अक्ख एवि अहं अव्वए वि अहं अवट्ठिए वि अहं उपज ओट्ठयाए अणेगभूय भाव भविए वि अहं

—भगवती सूत्र १।८।१०॥

२३. उत्पादव्ययध्रौव्य युक्तं सत् —तत्त्वार्थसूत्र ५।२९

यहाँ पर सहज ही शंका उद्बुद्ध होगी कि द्रव्य और सत् एक ही है, फिर इनके लक्षण भिन्न-भिन्न क्यों हैं? इसका समाधान यह है कि उत्पाद और व्यय के स्थान पर पर्याय शब्द है और ध्रौव्य के स्थान पर गुण। उत्पाद और व्यय परिवर्तन की सूचना दे रहे हैं और ध्रौव्य नित्यता का सूचक है।²⁴ इसी बात को इस प्रकार कहा है कि उत्पाद और विनाश के बीच एक रूप है जो स्थिर है, वही ध्रौव्य है।²⁵ यही नित्य की परिभाषा है। तात्पर्य यह है कि प्रत्येक पदार्थ के स्थायित्व में एक रूपता रहती है। वह नष्ट नहीं होता, नवीन भी नहीं होता।

जैन दर्शन सदसद् कार्यवादी है। अतः वह प्रत्येक वस्तु में अस्तित्व और नास्तित्व ये दो धर्म स्वीकार किये गये हैं। वह द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव इन स्व-चतुष्टय की अपेक्षा से वस्तु अस्तित्व रूप है और पर-चतुष्टय की अपेक्षा से नास्तित्व रूप है।²⁶

बुद्ध ने अस्ति और नास्ति इन दोनों को नहीं स्वीकारा है। सब है, इस प्रकार कहना एक अंत है, सब नहीं है ऐसा कहना दूसरा अन्त है। इन दोनों अन्तों का परित्याग करके मध्यम मार्ग का उपदेश दिया है।²⁷

किन्तु जैन दर्शन ने अस्ति और नास्ति के संबन्ध में जो मत स्थिर किया है वह अपूर्व है और अनूठा भी। आत्मा में अस्तित्व और नास्तित्व दोनों का परिणमन होता है यह जैन दर्शन का अपना मन्तव्य है।²⁸ अस्ति और नास्ति के संबन्ध में जब प्रभु महावीर से पूछा गया तब उन्होंने उत्तर दिया कि “हम अस्तित्व को नास्तित्व नहीं कहते हैं और नास्तित्व को अस्तित्व नहीं कहते हैं। जो अस्तित्व है उसे अस्तित्व कहते हैं और नास्तित्व है उसे नास्तित्व कहते हैं।”²⁹

२४. तत्त्वार्थसूत्र ५।२३

२५. तदभावीव्यय —तत्त्वार्थसूत्र ५।३०

२६. सदेव सर्व को नेच्छत् स्वरूपादि चतुष्टयात् ।

असदेव विपर्या सान्न चैत्र व्यपतिष्ठते ॥

—आप्तमीमांसा श्लोक—१५

२७. सव्यं अत्थीति खो ब्राह्मणा अयं एको अन्तेस्वयं नत्थीति खो ब्राह्मणा अयं दुतियो अन्तो । एते ते ब्राह्मणा उभो अन्तो अनुपगम्म मज्जेन तथागतो, धम्मदेसे निपविज्जा पचंया ।

—संयुक्तनिकाय १२।४७ ॥

२८. से नूणं भंते अत्थितं अत्थिते परिणमई । नालीत्तां नत्थिते परिणमई हंता गोयमा परिणमई ॥ नत्थितं नत्थिते परिणमई, नं कि पओमसा निससा ?

गोयमा पओमसा वि तं बीअ सा वि तं ।

जहा ते भंते अत्थितं अत्थिते परिणमई तट्ठा ते नत्थितं नत्थिते परिणमई ? जहा ते नत्थिते नत्थिते परिणमई ।

वहाँ वे अत्थितं अत्थिते परिणमई ? —भगवती १।३।३३

२९. नो खलु वयं देवाजुप्पिया । अत्थि भावं नत्थिति वदामो । नत्थि भावां अत्थिति वदामो । अम्हे णं देवाजुप्पिया । सव्यं अत्थि भावं अत्थिति वदामो सव्यं नत्थि भावं । नत्थिति वदामो ।

—भगवती सूत्र ७।१०।३।०४

पूर्वोक्त उदाहरण एवं विवेचन से निष्कर्ष यह रहा है कि प्रत्येक पदार्थ में नित्यत्व, अनित्यत्व, एकत्व, अनेकत्व, सांतता, अनन्तता, सद् असद् आदि अनेक धर्म विद्यमान हैं। उनको हम एक अपेक्षा से समझ सकते हैं। इस अपेक्षा दृष्टि को जैन दर्शन में “नय” कहते हैं।

नयवाद—एक चिंतन

अनेकान्त का आधार नयवाद है। नय का तात्पर्य है ‘वस्तु के स्वरूप को सापेक्ष दृष्टि से देखना, परखना और वस्तु में अनन्त गुण धर्मों की सत्ता को अनेक दृष्टियों से, अनेक अपेक्षाओं से समझना।

नयों में वस्तु में स्थित धर्मों को समझने की समग्र दृष्टियों का अन्तर्भाव हो जाता है। जैसे फल में आकार भी है, रूप भी है, गन्ध भी है तथा अन्य अनेक धर्म भी हैं। जब हम उस फल को आकार-प्रकार की दृष्टि से देखते हैं तो हमें वह गोल, त्रिकोण अथवा अन्य किसी आकार में दृष्टिगोचर होगा। इसी तरह अन्य धर्मों की दृष्टि से उसको हम देखेंगे तो वह वैसा ही दिखाई देगा। इस प्रकार ये समग्र दृष्टियाँ नयवाद के अन्तर्गत आ जाती हैं।

प्रमाण वस्तु के अनेक धर्मों को ग्रहण करता है और नय एक धर्म का ग्राहक है।³⁰ नय एक धर्म ग्रहण करता हुआ भी इतर धर्मों का निषेध नहीं करता है। यदि निषेध करता है तो वह नय नहीं है दुर्नय है।³¹ स्याद्वाद सकलादेश है और नय विकलादेश है।³²

आगमों में सात नयों का उल्लेख है। वे इस प्रकार हैं—नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ, और एवंभूत।³³ आचार्य सिद्धसेन ने लिखा है कि वचन के जितने प्रकार हैं या मार्ग हो सकते हैं नय के भी उतने ही भेद हैं।³⁴ इस कथन के आधार पर नय के प्रकार भी अनन्त होते हैं क्योंकि वस्तुगत धर्म को ग्रहण करने वाले अभिप्राय भी अनन्त हैं तथापि मौटे तौर पर उन सबका समावेश सात नयों में हो जाता है। यहाँ पर सप्त नयों पर संक्षेप में प्रकाश डाला जा रहा है—

१. नैगम नय—गुण और गुणी, अवयव और अवयवी, क्रिया और कारक आदि में भेद की और अभेद की विवक्षा करना नैगम नय

३०. अर्थस्यानेकरूपस्या धी प्रमाणं तदर्शधी।

नयो धर्मान्तरापेक्षी दुर्नयः तन्निराकृतिः ॥

३१. स्वामीप्रेता दशादितरांशा पलायी पुनर्नयामांसा

—प्रमाणनय तत्वालोक

३२. स्याद्वाद सकलादेशो नयो विकलादेश—लघीयस्ययः ३।६।६२॥

३३. (क) अनुयोग द्वारसूत्र १५६

(ख) स्थानांग सूत्र ७।५५२

(ग) तत्त्वार्थ राजवार्तिक १।३३

३४. जावइयाववणवहा ताव इया चेव होंति नय वाया

जावइयाणय वाया तावइया चेव परसमया ॥

—सन्मति तर्क प्रकरण ३।४७

का विषय है। इस प्रकार गुण और गुणी कथंचित् भिन्न हैं और कथंचित् अभिन्न हैं। इस बात को दूसरे शब्दों में यों भी कहा जा सकता है कि भेद का ग्रहण करते समय अभेद को गौण समझना और अभेद का ग्रहण करते समय भेद गौण समझना और अभेद को प्रधान समझना नेगम नय है।³⁵

२. संग्रह नय—सामान्य या अभेद का ग्रहण करने वाली दृष्टि अर्थात् स्वजाति के विरोधी के बिना समग्र पदार्थों का एकत्व में संग्रह करने वाला नय संग्रह नय कहलाता है। यह प्रत्यक्ष सचाई है कि प्रत्येक पदार्थ सामान्य विशेषात्मक है। यह नय सामान्य धर्म को ग्रहण करता है, विशेष धर्म की उपेक्षा भाव रखता है।

३. व्यवहार नय—संग्रह नय के द्वारा ग्रहण किये गये अर्थ का विधिपूर्वक अवहरण व्यवहार का विषय है।³⁶ संग्रह नय केवल सामान्य को ग्रहण करता है किन्तु व्यवहार नय सामान्य का भेद पूर्वक ग्रहण करता है। अभेदपूर्वक नहीं।

४. ऋजुसूत्र नय—भेद अथवा पर्याय की विवक्षा से कथन करना ऋजुसूत्र नय है।³⁷ यह नय भूत भविष्य की उपेक्षा करके मात्र वर्तमान का ग्रहण करता है। क्योंकि वर्तमान काल में ही पर्याय की अवस्थिति होती है। प्रस्तुत नय प्रत्येक पदार्थ में भेद ही भेद देखता है।

५. शब्द नय—काल, कारक, लिंग, संख्या आदि भेद से अर्थ भेद मानना शब्द नय का विषय है। यह नय एक ही पदार्थ में काल, कारक आदि भेद से भेद मानता है।

६. समभिरूढ—शब्द नय काल, कारक, लिंग, संख्या आदि के भेद से अर्थ में भेद मानता है। पर वह एक लिंग वाले एकार्थक शब्दों में किसी प्रकार भेद नहीं मानता। पर यह नय व्युत्पत्ति मूलक शब्द भेद से अर्थ भेद मानता है। क्योंकि प्रत्येक शब्द की अपनी अपनी व्युत्पत्ति है। उसके अनुसार उसका अर्थ भिन्न-भिन्न होता है।

७. एवंभूत नय—समभिरूढ नय व्युत्पत्ति से अर्थभेद है, ऐसा मानता है। किन्तु प्रस्तुत नय जब व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ घटित होता है तभी उस शब्द का अर्थ स्वीकार करता है।

इन सात नयों के भी दो अवान्तर भेद हैं, द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक।³⁸ द्रव्यार्थिक नय में नैगम, संग्रह और व्यवहार तथा

३५. अन्योन्य गुण भूतैक भेदाभेदमरूपणात्।

नैगमोऽर्थान्तर रत्नोक्तो नैगमा मास इष्यते ॥

—लघीयस्यय २।५।३०

३६. अतो विधिपूर्वक भव हरणं व्यवहार।

—तत्त्वार्थराजवार्तिक १।३।३६

३७. भेदं प्राधान्यतोऽन्विच्छन् ऋजुसूत्र नयो मतः।

—लघीयस्यय ३।६।७१

३८. समास्तु द्वि भेद—द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिकश्च।

—प्रमाणनय तत्वालोक ७।४।५

पर्यायार्थिक नय में ऋजुसूत्र, शब्द समभिरूढ़ और एवंभूत का समावेश हो जाता है ।

जो नयवस्तु के धर्म का निषेध करता है वह दुर्नय है ।³⁹ नय प्रमाण और अप्रमाण दोनों से भिन्न है । वह तो प्रमाण का एक अंश है । जिस प्रकार समुद्र का अंश न समुद्र है और न असमुद्र है किन्तु वह समुद्रांश है ।⁴⁰

नय वस्तु के एक धर्म तक ही सीमित रहता है । स्याद्वाद का कथन वस्तु के समग्र धर्मों का ग्रहण करता है और इसका कथन एक धर्म का ग्राहक है । अतः स्याद्वाद सकलादेश है और नय विकलादेश । इसका तात्पर्य यह हुआ कि सकलादेश की विविक्षा सकल धर्मों के प्रति और विकलादेश की विविक्षा विकल धर्म के प्रति है ।⁴¹

अनेकान्त स्याद्वाद और सप्तभंगी

प्रत्येक पदार्थ अपने आप में अखंड है, एकरूप है और अनन्त गुण धर्मों से संयुक्त है । उसके अपने स्वतंत्र गुण और पर्याय हैं । किसी भी वस्तु का निरूपण उसके प्रतिपक्षी गुण धर्म की अपेक्षा से किया जाता है । अनेकान्त वस्तु की अनेक धर्मिता को सिद्ध करता है और स्याद्वाद उसकी व्याख्या करने में एक स्वर्णिम सूत्रपात करता है । सप्तभंगी व्यवस्थिति विश्लेषण प्रस्तुत करती है । सप्तभंगी की कथन शैली में एक ही वस्तु में अविरोधपूर्वक विधि और प्रति बोध तत्वों का सुन्दर निर्वाह होता है ।⁴² दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि सप्तभंगीवाद स्याद्वाद का विश्लेषण है । जिज्ञासु के अन्तर्मानस में सहज ही जिज्ञासा उद्बुद्ध हो सकती है कि सप्तभंगी क्या है और इसकी क्या उपयोगिता है ? इस प्रश्न के उत्तर में कहा गया है कि—संसार की प्रत्येक वस्तु के स्वरूप के कथन में सात प्रकार के वचनों का प्रयोग किया जा सकता है ।⁴³

३९. स्वायि प्रेतादिदेशा दि तराणा प्रलापी पुनर्नयाभासा—

—प्रमाणनय तत्वालोक

४०. ना समुद्रः समुद्रोवा समुद्रांशी यथैव हि ।

नायं वस्तु न चावस्तु वस्त्वंशो कथ्यते बुद्धेः ॥ श्लोकवार्तिक

४१. स्याद्वादसकलादेशोनयोविकलसंकथा—लघीयस्थपः—३।६।६२

४२. प्रश्नवशादेकस्मिन् वस्तुन्यविरोधेन विधि प्रतिषेध विकल्पना सप्तभंगी—तत्त्वार्थराजवार्तिक १।६ टीका

४३. सप्तभिः प्रकारैः वचन विन्यासः सप्तभंगिनिः गीयते

(वर्तमान समाज और..... पृष्ठ २७ का शेष)

को लांघना चाहता है । वर्तमान समाज का एक व्यक्ति या वस्तु का अपने गुणपर्यायों से वास्तविक अभेद हो सकता है, पर दो व्यक्तियों में वास्तविक अभेद संभव नहीं है । इस तरह जब वस्तुस्थिति ही अनेकान्तमयी या अनंत धर्मात्मक है तब मनुष्य सहज ही यही सोचने लगता है कि दूसरा वादी जो कह रहा है उसकी सहानुभूति से समीक्षा होनी चाहिए और उसका वस्तु स्थिति

अपेक्षा के महत्व को ले कर सात प्रकार के वचनों का प्रयोग किया जाता है । प्रत्येक शब्द के दो वाच्य होते हैं—विधि और निषेध । प्रत्येक विधि के साथ निषेध है और प्रत्येक निषेध के साथ विधि भी है क्योंकि एकान्तरूप से न कोई विधि है और न कोई निषेध ही है । द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से वस्तु का विवेचन किया गया है । सात प्रकार के जो भंग बताए गये हैं उनका निरूपण इस प्रकार है—

- | | |
|---------------------|---------------------------------|
| १. स्याद् अस्ति | ५. स्यात् अस्ति अव्यक्तं |
| २. स्याद् नास्ति | ६. स्यात् नास्ति अव्यक्तं |
| ३. स्यादस्ति नास्ति | ७. स्यात् अस्ति नास्ति अव्यक्तं |
| ४. स्यात् अव्यक्तं | |

इनमें से प्रथम भंग विधेयात्मक विचार के आधार पर बना है । इसमें वस्तु के अस्तित्व का विधेयात्मक भाषा में प्रतिपादन किया गया है । द्वितीय भंग निषेधात्मक विचार के आधार पर निर्मित है । इसमें वस्तु के अस्तित्व रूप का निषेधात्मक ढंग से विवेचन किया गया है । तृतीय भंग विधि और निषेध का क्रमशः विवेचन करता है । प्रस्तुत भंग प्रथम और द्वितीय के संयोग से बना है । चतुर्थ भंग विधि एवं निषेध का युगपत् प्रतिपादन करता है । दोनों का प्रतिपादन करना यह वचन की शक्ति से बाहर है इसलिए इसे अव्यक्त कहा गया है । पंचम भंग विधि और अव्यक्त दोनों का विवेचन करता है । प्रस्तुत भंग प्रथम और चतुर्थ के संयोग से निर्मित है । छठा भंग निषेध और अव्यक्त का प्रतिपादक है । यह भंग द्वितीय और चतुर्थ के संयोग से बना है । सप्तम भंग विधि निषेध और अव्यक्त का विवेचन है । यह तृतीय और चतुर्थ भंग के संयोग से बना है ।

अभिप्राय यह है कि किसी भी वस्तु में जो अस्तित्व है वह निरपेक्ष नहीं । किन्तु उसके अपने स्वरूप की अपेक्षा से है । अपने स्वरूप की अपेक्षा से वह सत् है और परस्वरूप की अपेक्षा से असत् भी है ।

इस प्रकार दार्शनिक जगत में जैन दर्शन द्वारा प्रस्तुत अनेकान्तवाद अथवा स्याद्वाद सिद्धान्त एक अनुपम योगदान है । जो सदा सर्वदा दिव्य दिवाकर की भाँति विश्व साहित्याकाश में प्रदीप्तमान होता रहेगा और अपनी ज्वलंत ज्योति से जनमानस को ज्योतिर्मय करता रहेगा । □

मूलक समीकरण होना चाहिये । मानस समता के लिये अनेकान्त दर्शन ही एकमात्र स्थित हो सकता है । इस प्रकार अनेकान्त दर्शन से विचार शुद्धि हो जाती है, जब स्वभावतः वाणी से नम्रता और समन्वय की वृद्धि उत्पन्न होती है । वर्तमान समाज में अगर अनेकान्त दर्शन का जीवन के व्यवहार में प्रयोग किया जाता है तो वहाँ चित्त में समता, माध्यस्थभाव, निष्पक्षता का उदय होता है । □